3

स्कूल से पहले

मोईनुद्दीन खान*

बच्चे तो आखिर बच्चे ही हैं। ये सिर्फ़ मैं नहीं, आप भी कहते हैं। तब भला उन्हें बच्चे ही क्यों नहीं रहने देते? खासकर तब, जब उनकी बच्चे बने रहने की उम्र होती है। उन्हें सधी हुई ज़बान में फ़र्राटे से बोलने वाले तोते या एक संकेत पर काम करने वाली मशीन क्यों बनाना चाहते हैं? जब उनके खुले रहने के दिन शुरू होते हैं, तभी हम उन्हें बाँधना शुरू कर देते हैं। उनके खेल आपने क्यों छीन लिए? उनकी तोतली ज़बान आपने क्यों ग़ायब कर दी? उनकी शरारतें, चंचलता, मासूमियत, सवाल, सपने, जिज्ञासा, उदारता आदि कहाँ बंद करके रख दिया आपने? न उनके साथी-संगी रहे (आखिर गलत साथ से वह बिगड़ जो सकता है) और न ही उसके खिलौनों का पिटारा। घास का मैदान उन्हें मिला नहीं, मिट्टी में उन्हें लोटने आप देंगे नहीं। क्या आपको ये बर्दाश्त है कि वह दो साल के हो जाएँ और कुछ खेलगीत, किस्से-कहानियाँ सुना पाएँ, आखिर अब उसके स्कूल जाने का वक्त जो आने वाला है। वहाँ बिना कुछ ज्ञान के दाखिला कैसे होगा? (वैसे एक बात मेरी समझ से परे है कि बिना विद्यालय दर्शन के समझ कहाँ? ज्ञान व समझ तो शायद कक्षा में ही मिलता है)

आज बच्चों का जीवन मशीनीनुमा बनता जा रहा है। हैरत इस बात की है कि उनके अभिभावक भी उनके साथ स्कूल जाने की तैयारी में लगे रहते हैं। बच्चों को जल्दी उठना पड़ता है। स्कूल दूर होने पर यह परेशानी और भी बढ़ जाती है। हम उन्हें हमेशा बड़ा बनाने के चक्कर में ही रहते हैं। आखिर वे छोटे कब रहेंगे? उन्हें पता ही नहीं चलता कि बचपन कैसा होता है? किससे शिकायत करें वे? दादा-दादी से? अब तो उनका भी साथ मुश्किल से मिलता है।

ये मुद्दा बहुत गौर करने का है कि कहीं हम अपने बच्चे को कुछ देने के चक्कर में उसका बहुत कुछ छीन तो नहीं रहे हैं। स्कूल से पहले का समय ही उनके जीवन की आधारशिला है। इसमें बंधन और तनाव न हो। यही वक्त है जब उनके पाँव और मस्तिष्क दोनों को मज़बूत करना है। उन्हें सहारा देना है, उन्हें सुरक्षा का भाव देना है। उन्हें ये महसूस कराना है कि वे खास हैं और साथ ही साथ आज़ाद भी हैं। हमें समझना होगा कि ये वक्त कितना महत्वपूर्ण है और बच्चे की ज़िंदगी में क्या किरदार तय कर सकता है।

रूसो कहता है कि सारी खराबी कमज़ोरी से आती है; बच्चों को मज़बूत बनाया जाए ताकि वे कुछ भी खराब चीज़ न करें। उसका तो यहाँ तक मानना है कि बारह वर्ष की उम्र तक बच्चों को किसी भी किताब के बंधन में न बाँधा जाए। वह इसकी सार्थकता और उचित कारण भी बताता है।

* *प्रवक्ता*, ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, नूरसराय, नालंदा, बिहार 803 113

प्रकृतिवाद को जिन्होंने वास्तव में समझा है, वे ज़रूर जानते होंगे कि वह कैसे और क्यों हर उस चीज़ का विरोधी है जो किसी भी रूप में बंधन लाती है या रोक-टोक करती है। आज़ादी बहाव और ऊर्जा का भाव है। बस बंधन और रोक-टोक ही विनाशी है। आज़ाद शुरुआती जीवन देना है हमें अपने बच्चों को। यही पूर्ण विकास का सूत्र है। स्कूल में तो उसे अनुबंधित हो ही जाना है। इस लेख में बच्चों के स्कूल जाने से पहले के समय की महत्ता पर प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

स्कूल भेजने की करो तैयारी, जंग होनी है वहाँ बड़ी भारी

आपको जानकर हैरानी होगी कि अभिभावकों द्वारा गूगल पर पूछे गए ऐसे सवालों का प्रतिशत बहुत अधिक है जिनमें वे ये पूछते नज़र आ रहे हैं कि अपने बच्चों को स्कूल भेजने से पहले वे क्या-क्या तैयारी करवाएँ। उनके द्वारा पूछे जाने वाले कुछ मज़ेदार सवालों पर गौर करें—

- स्कूल जाने से पहले मेरे बच्चे को क्या-क्या जानना चाहिए?
- अपने बच्चे को स्कूल भेजने के लिए मैं क्या-क्या तैयारी करूँ?
- स्कूल जाने से पहले बच्चे क्या-क्या करें?
- मेरी बच्ची पढ़ने में रुचि कैसे ले?
- पाँच/सात साल के बच्चे को कितना पढ़ना आना चाहिए?

कितना दुःखद है ये सब कि जो काम बच्चे पहली बार करेंगे भला उसकी तैयारी कैसी और अभी से रुचि और समय का सवाल क्यों? वक्त पर हर चीज़ सही लगती है, उससे पहले तो उल्टा परिणाम ही मिलेगा। इसमें दो राय नहीं कि हमारे आसपास के माहौल ने हमें भी ऐसा ही बना दिया है, लेकिन कुछ बेहतर पाने के लिए कुछ तो अलग करना होगा।

आपको किसी चीज़ की तैयारी नहीं करनी है, बस अपने बच्चे को आज़ादी देनी है। स्कूल में जंग नहीं होनी है। डर, शंका और दबाव उसे कमज़ोर कर देगा। कमज़ोरी उसे गलती करने पर बाध्य कर देगी। बस उसे महसूस करा दीजिए कि उसे आनंद करते हुए मग्न रहना है।

स्कूल बनाम प्री-स्कूल

अब तो प्री-स्कूल भी एक पद जैसा जान पड़ता है जोकि वास्तव में एक खास कक्षा का बस बदला हुआ नाम भर है। है तो ये विद्यालय के चार दीवारों के भीतर ही। इसे ऐसा माना ही नहीं जाता कि ये उस ओर संकेत है जब बच्चे घर में रहते हैं (क्योंकि स्कूल जाने की अभी उसकी उम्र नहीं हुई), बल्कि ये स्कूल में ही एक खास कक्षा का नाम है। इसका अर्थ ही स्कूल है। तब सोचने की बात है कि भला घर का क्या किरदार होगा, बच्चों की परवरिश में। क्योंकि पैदा होते ही तो उनके अलग-अलग जगह प्रवेश के समुदाय ने नियम बना रखे हैं। वास्तव में प्री-स्कूल का अर्थ होना चाहिए था— जब बच्चे विद्यालय में प्रवेश न पाएँ हों (अर्थात् घर की दुनिया)। वहाँ भेजकर तो हम सारी ज़िम्मेदारी से मुक्त हो गए। बस अभिभावक होने का प्रमाण भर रहा हमारे पास। इस हाल में हम अच्छे कल की (जब बच्चे बड़े होकर हमें समझे) उम्मीद कैसे करें? समय तो उन्हें हमने दिया नहीं। दरअसल हमें घर में मेहनत करनी है, मेहनत उन्हें बच्चे बनाने की। जहाँ सुबह उठते ही कुछ बंधन स्वरूप करने का भय न हो। अच्छे ख्वाबों की उनकी नींद हो और उजली सुबह।

घर हो बच्चे का पहला विद्यालय

बिल्ली के प्रजनन में एक विचित्र और विचारणीय बात है। प्रसव के बाद वह अपने बच्चों के साथ हर दो-तीन दिन पर अपना स्थान बदल देती है। ये सिलसिला तब तक चलता रहता है, जब तक कि उसके बच्चे बड़े नहीं हो जाते। ऐसा शायद सुरक्षा की दृष्टि से करती है। बात कुछ भी हो, पर इस जानवर का ये काम उसका अपने बच्चों के प्रति लगाव, चिंता, ज़िम्मेदारी, सकारात्मक व्यवहार आदि दर्शाता है। क्या इंसान, जो सर्वोच्च प्राणी है, कोई ज़िम्मेदारी या भाव नहीं रखता? सबसे समझदार होकर क्या उसे ये नहीं लगता कि उसके नवजात (और बड़े होते) शिशु को अभी उसकी और भी ज़रूरत है? वह उसे कहीं और सरकाने के चक्कर में क्यों रहता है (ये सच है कि ऐसा वह अपने बच्चे के हित के लिए करना चाहता है, लेकिन होता तो उल्टा ही है)?

हकीकत में घर ही बच्चे की पहली और महत्वपूर्ण पाठशाला है। उसे यहीं सींचिए। यहीं उसे मज़बूती प्रदान कीजिए। आपका नौनिहाल आपकी राह देख रहा है; किसी बंधनयुक्त भवन के कर्मियों की नहीं। आखिर बिल्ली हमें कुछ ज़िम्मेदारी तो सिखाती ही है।

वह है कौन?

पहले बच्चे को ये बताना होगा कि आखिर वह है कौन? उनका अस्तित्व क्या है? उन्हें करना क्या है? फिर इतिहास, भूगोल, विज्ञान या फिर वर्णमाला आदि जो भी पढ़ाना है, वह पढ़ाइए। आखिर एक तर्क तो हो न उनके पास कि उन्हें पढ़ना क्या है और क्यों पढ़ना है। खुद को तो जान लें पहले वह। बहुत-सी बातें रट के वे करेंगे क्या? ज़रूरी बात तो थी उनका ये जानना कि आखिर वह है कौन। इसी को हम अनदेखा कर देते हैं। बस खुद की रची कठोर शिक्षा प्रणाली में उन्हें बाँधना शुरू कर देते हैं। यही वजह है कि उन्हें न मकसद मिलता है और न ही राह मिलती है। डिग्री लेकर भी वे सुनसान रेगिस्तान में भटकते रहते हैं। तो, तय कर लीजिए कि पहले उन्हें खुद का (बच्चे के) खुद से परिचय करवाना है।

नित्य कर्म की ज़िम्मेदारी

ठीक है, स्कूलों में हर तरह की व्यवस्था है। नित्य ज़रूरत के कामों के लिए भी मानवीय संख्या पर्याप्त दिखती है। निजी स्कूलों का तो कहना ही क्या। लेकिन क्या ये बात आपको हैरत में नहीं डालती कि बच्चे अभी स्वयं शौच आदि से निवृत्त होने में परिपक्व हुए नहीं और बस्ता टाँगे चल पड़े स्कूल। इस बात का ख्याल रखिए कि वह खुद को संभालने योग्य हो जाएँ, फिर स्कूल देखें। कहीं न कहीं उनमें आत्म-ग्लानि भी महसूस होती होगी। ये अलग बात है कि वे व्यक्त नहीं कर सकते और उनके सारे साथी उन्हीं की श्रेणी के हैं। इसमें मनोविज्ञान भी यही है कि बच्चे स्कूल में पढ़ने जाए न कि शौच क्रिया में निपुण होने। ये काम घर का है।

अलगाव का डर

बच्चे संसार में आते ही पहला बाह्य संपर्क भी अपनी माँ का पाते हैं। उसके बाद घर के अन्य सदस्यों से सानिध्य प्राप्त करते हैं। उनके संरक्षण में वे सुरक्षित महसूस करते हैं। उनके पास ही वे रहना चाहते हैं और उन्हें ही अपने आसपास देखना चाहते हैं। बाहरी लोगों से वे सहज नहीं हो पाते। उन्हें सबसे ज़्यादा डर अपनों से अलगाव का होता है। एक खास उम्र के बाद ही वे अन्य लोगों से सामंजस्य स्थापित करने योग्य हो पाते हैं। अब ध्यान ये रखना है कि वह खास समय बच्चे में कब आता है। कहीं बहुत पहले ही

तो हम उन्हें अलग नहीं कर दे रहे। समाज से उनका संपर्क उनके समाजीकरण के लिए बेहद ज़रूरी है लेकिन इसके लिए वे तैयार तो हों। समाजीकरण की शुरुआत घर से ही हो जाती है। इसकी चिंता या तर्क उचित नहीं। बच्चे के अलगाव के डर को खुशियों से समाप्त कर ही (बढ़ती उम्र के साथ) उसे स्कूल की राह दिखाएँ।

बच्चों से बातें

बच्चों से (भले वे बेहद छोटे ही क्यों न हों) बातें किया करें। इसका अपना खास महत्व है। सुनकर भी बच्चे अच्छी तरह सीखते हैं। भाषा का विकास तो सुनकर ही होना है। उनके शब्द भंडार बढ़ेंगे। उनकी सोच की सीमा बढ़ेगी और वे खुद को बेहतर तरीके से प्रदर्शित (भाषा से) कर पाएँगे। कल को जब आपकी बच्ची कक्षा में जाएगी तो उसके पास मौखिक भाषा रूपी धन होगा जो उसे सीखने में कारगर साबित होगा। उनमें आत्मविश्वास आएगा और वे अपने आसपास की वस्तुओं के विषय में संबोधन ध्वनि सीख सकेंगे। बातों से अपने बच्चे से जुड़ाव में भी आपको वृद्धि देखने को मिलेगी। बच्चे में ध्यान केंद्रित करने की कला का भी विकास होगा। जब सुनकर वह बोलना शुरू कर देगी तब आप उसके विषय (वास्तव में उसकी समझ के विषय) में आकलन भी कर पाएँगे। मनोवैज्ञानिक आधार पर बात की जाए तो इससे बच्चे को ऐसा लगेगा कि उसे महत्व दिया जा रहा है और उसके मन में स्वयं की एक सकारात्मक आत्म-छवि के निर्माण की प्रबल संभावना होगी।

उनकी बातें

बच्चे की बातों को सुनने की आदत डालिए। इससे उनको अभिव्यक्ति का मौका मिलेगा और अपने अस्तित्व का सकारात्मक एहसास होगा। अपनी सोच और ज़रूरतों को बताने के लिए उन्हें एक माध्यम के साथ-साथ एक केंद्र भी मिल जाएगा। आपके सुनने में सदैव सक्रिय रहने से उनमें हिचकिचाहट और संशय की भावना पनपने नहीं पाएगी। उनकी जिज्ञासाओं को एक नयी उड़ान मिलेगी। हर तरह के प्रश्न पूछकर वे संतोष प्राप्त करेंगे। हर बार सुने जाने पर वे नए प्रश्न तलाश करेंगे और अपनी सोच को एक नयी दिशा की ओर मोड़ेंगे। बच्चों को एक संरक्षण-भाव की प्राप्ति होगी कि कोई जगह है जहाँ वे बातें कर सकते हैं।

सीखते कैसे हैं?

किसी भी काम को सीखने के प्रयासों से आखिर वह काम करना आ ही जाता है। करते-करते सीखना एक अलग बात है। पर ये सीखना कि सीखते कैसे हैं, एक बड़ी बात है। यही हुनर हमें बच्चों को देना है। ये काम शानदार तरीके से सिर्फ़ आप कर सकते हैं। इसका सीधा-सा अर्थ हुआ कि ये काम घर पर होना है। इसमें वक्त लगेगा और इसमें धैर्य की आवश्यकता है। यकीन रखिए कि आपको बहुत मेहनत नहीं करनी है, क्योंकि ये काम समय के साथ इस तरह मिला हुआ होगा कि आपको पता ही नहीं चलेगा कि कब आपको बेहतर परिणाम मिलने लगे। आपका पौधा मज़बूत होने लगेगा। इतना मज़बूत कि हवा के झोंकों को झेल सके और परिस्थिति के अनुसार दिशा बदलकर अपनी हिफ़ाज़त कर सके। हाँ, थोड़ा वक्त तो लगेगा। तो उसे सिखाइए कि सीखते कैसे हैं।

आपकी चेतना

जब आपमें चेतना नहीं होगी, आप खुद नहीं जागेंगे, आपको पता नहीं होगा कि करना क्या है; कैसे आप

अपने बच्चे के लिए बेहतर करेंगे? पहले आपको स्वयं तैयार होना है। बहुत-सी बातें और सही बातें आपको पता होनी हैं। वे बातें जो वास्तव में आपके बच्चे के लिए बेहतर हैं। सिर्फ़ जज़्बात से कुछ नहीं होगा। बिना अच्छी और सही समझ के तो आप अपने बच्चे के भलाई के बजाय उसका सबकुछ बिगाड़ बैठेंगे। आप खुद बेहतर हों, तब अपने बच्चे को कुछ बेहतर दे पाएँगे। बिना स्वयं रोशन हुए दिया प्रकाश नहीं दे सकता। आप ज़िम्मेदारी निभाना चाहते हैं और निभाते भी हैं, लेकिन बिना परिपक्वता वाली। यही कारण है कि सही चीज़ अपने बच्चे को आप दे नहीं पाते और परिणाम बहुत सुखद आता नहीं। तो पहले चेतना में आ जाइए।

ईश्वर को पहचानें

ईश्वर से जुड़ाव का होना या आस्थावान होना एक सहारा देता है। ज़िंदगी के बहुत से आयामों में हम नैतिकता को आधार मानकर फ़ैसले करते हैं। हमारी खुशियाँ और हमारे गम दोनों ही बीच-मार्ग पर नज़र आते हैं। आध्यात्मिकता जीवन का एक ढंग बताती है। हम जान जाते हैं कि अनुशासन में रहते हुए कैसे आनंद से जीना है। अब सवाल ये है कि ऐसे भाव की ओर कब उन्मुख हुआ जाए या इस भाव का बीज कब पड़ जाना चाहिए? आसान सा जवाब है— जीवन मार्ग पर कदम बढ़ाते ही। बच्चों को आस्थावान बनाइए। उन्हें सद्कर्म के मायने उपदेश और अपने कर्मों से बताइए। उनमें मज़बूती और सकारात्मक सोच के संचार के लिए प्रयास कीजिए। धीरे-धीरे इस आस्था रूपी सच्चाई के अर्थ को जानकर बच्चे इसे आत्मसात करेंगे और जीवन मार्ग में निर्भीक कदम बढ़ाने को तैयार होगें।

खुद को संभाल तो लें

एक बात बड़े ध्यान देने की है कि बिना एक खास उम्र में पहुँचे हम बच्चे को कोई खास काम (काम विशेष) नहीं सिखा सकते। उदाहरण के तौर पर दो साल के बच्चे को हम लिखना नहीं सिखा सकते, पाँच साल के बच्चे को बड़ी साइकिल चलाना नहीं सिखा सकते, बिना किशोरावस्था को पहुँचे वे पूरी तरह अमूर्त चिंतन नहीं कर सकते। इन बातों से मालूम पड़ता है कि एक समय विशेष के बाद, समर्थ होकर ही बच्चे कोई काम विशेष कर सकते हैं। अब चाहे बात शारीरिक दृष्टि से की जाए या फिर मानसिक; बच्चे में एक खास परिपक्वता की ज़रूरत जान ही पड़ती है। इसलिए अपने बच्चे को स्कूल भेजने से पहले हम तय कर लें कि वे अब विद्यालय जाने के लिए पर्याप्त मज़बूत (तैयार) हो चुके हैं। कम-से-कम वे खुद को तो संभाल लें।

बात करना जान लें

भाषा दूसरों की बात समझने और अपनी बात समझाने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। इतनी छोटी उम्र में बच्चे को स्कूल भेज देना जब उसमें भाषा का विकास हुआ ही न हो, तर्कसंगत नहीं जान पड़ता। हमें उतना तो इंतज़ार करना ही होगा जब वे इस योग्य हो जाएँ कि अपनी बात कह पाएँ और सामने वाले की बात समझ पाएँ। अपने विचारों, अपनी बातों, अपनी ज़रूरतों और तात्कालिक बातों को जब तक बच्चे अभिव्यक्त न कर पाएँ तब तक ये मानकर चलिए कि बहुत कुछ अधूरा है। तब ये सोचने की बात है कि कहीं हम अपने बच्चे को इसी अधूरेपन के साथ तो नहीं स्कूल भेजने जा रहे?

इस उम्र का घाव भरता नहीं

बालपन में मन में लगी कोई ठेस उम्रभर नहीं जाती। हमारी ज़िम्मेदारी है कि बड़ी ही संवेदनशीलता से अपने बच्चों को संभालें। उनकी हर संभव रक्षा करें। उन्हें धीरे-धीरे मज़बूती की ओर ले जाएँ। इसीलिए ये आवश्यक है कि शुरुआत का वक्त वह आपके साथ बिताएँ। उसके मन-मस्तिष्क पर सुनहरी और अच्छी यादें अंकित करिए। उन्हें प्रसन्नता प्रदान करने की पूरी कोशिश कीजिए।

फूहड़ता से बचाव

बच्चे जो खाते है, वही बनेंगे। सही है बात लेकिन मैं कहता हूँ कि वे जो देखते और सुनते हैं, वे भी बनेंगे। फूहड़ता का जो जमावड़ा हमारे अगल-बगल है, उससे उन्हें बचाना बहुत ज़रूरी है। ये जाँचना बेहद ज़रूरी है कि वे किन वस्तुओं और किन लोगों के संपर्क में आ रहे हैं। टी.वी., अखबार, मोबाइल और लोग उन्हें क्या दे रहे हैं और कितना दे रहे हैं; इसे आपको ही तय करना होगा। बेहतर चीज़ें उन्हें उत्थान की ओर जबकि बेकार की चीज़ें उन्हें पतन की ओर ले जाने वाली हैं। आगे चलकर हम परेशान व हैरान होंगे कि भला ये क्या उत्पाद तैयार हो गया। हम ने ऐसा पौधा तो नहीं लगाया था। लेकिन आप ये नहीं जान पाएँगे कि बिगड़े पौधे का कारण खाद और पानी भी तो हो सकते हैं।

मशीन से कुछ ज़्यादा ही बनना है उसे

इंसान मशीन नहीं हो सकता; न ही उसे मशीन होना चाहिए। मशीन की तरह व्यवहार उसके मूल स्वभाव को मार देगा। ये अलग बात है कि आज अनुबंधन के बाज़ार में ऐसा व्यवहार हर तरफ़ देखने में आम है। इंसान सोचता है, जज़्बात रखता है और काम करता है। कहा जा सकता है कि इंसान आखिर तीन हिस्सों का जोड़ है। यही उसका असल रूप है। यहीं से उसका उत्थान है और फिर यहीं तक उसे पहुँचना भी है। हमारी पूरी कोशिश हो कि हम अपने बच्चे को उसके मूल स्वभाव की ओर ले चलें, न कि रोबोट की दुनिया की ओर। भौतिकवादी संसार में आज नुकसान की बड़ी वजह है— इंसान का अपने मूल स्वाभाव से पलायन। माना कि इसके लिए लाख जतन किए जा रहे हैं (कितनी भी गोष्ठियाँ क्यों न कर ली जाएँ), पर सुखद परिणाम हम तभी पा सकते हैं जब हम अपने बच्चों पर मेहनत करें और अपनी सोच बदलें। कल को इन्हें ही सबकुछ संभालना है और मूल स्वभाव से संभालना है। हमें मेहनत करनी ही होगी। आखिर हमें अपने बच्चों को मशीनों से कुछ ज़्यादा ही बनाना है।

पग पर पग बढ़ाने का हुनर

स्कूल भेजने से पहले आप कुछ भी अगर तय न करें तो कम-से-कम एक चीज़ तो ज़रूर तय कीजिए कि बच्चे चलना (संभलकर चलना) सीख जाएँ। क्यों हम भरोसों के भरोसे बैठे हैं? क्या बिगड़ जाएगा? चल तो लें पहले।

ये राह नहीं आसान
उसे दूर तक जाना है
शुरुआत में जो गिर जाए
फिर क्या बतलाना है

खेलना और खाना

दोनों ही बातों की महत्ता की चर्चा हम बारी-बारी कर लेते हैं। शुरूआत से ही खेलों में हिस्सा लेने से बच्चों में शारीरिक कौशल का विकास होता है, उसके नए-नए दोस्त बनते हैं, समूह बनता है, वे व्यस्त रहते हैं, मस्त रहते हैं और एक तरह से देखा जाए तो उनकी शारीरिक कसरत भी हो जाती है। हालाँकि शोध बताते

हैं कि आज बदलते माहौल में बच्चों के खेल में कमी आई है। बच्चे के विकास के लिए घर के अंदर और घर के बाहर, दोनों खेल-अनुभव महत्वपूर्ण हैं। कुछ खेल जो उनके शारीरिक और मानसिक विकास में सहायक हैं, बताए जा रहे हैं—

- रेत के घर आदि बनाना।
- रंगों से खेलना, उनका प्रयोग करना।
- पानी में खेलना।
- बुलबुले बनाकर उड़ाना और उन्हें पकड़ना।
- चढ़ना, दौड़ना, पीछा करना, भागना, गेंद से खेलना, रस्सी कूदना आदि।

खेलों के स्वास्थ्य संबंधी भी अनेक लाभ हैं—

- आपके बच्चे की अनुकूलता में बेहतरी देखने को मिलेगी।
- वे सक्रिय रहेंगे।
- मानसिक रूप से भी सबल होगें।
- उत्साहित रहेंगे।
- उनके सामान्य स्वास्थ्य को भी बढ़ावा मिलेगा।

ये सच है कि पूर्व-स्कूली बच्चे (यहाँ मेरा अर्थ स्कूल न जाने वाले बच्चे हैं, न कि उस कक्षा के बच्चे जिसका नाम प्री-स्कूल रख दिया गया है) सक्रिय और ऊर्जावान होते हैं। ऐसे में उन्हें अपनी वृद्धि, विकास और रोज़ के क्रियाकलापों में पोषण के लिए उचित मात्रा में पोषक तत्वों व ऊर्जा से भरे भोजन की बेहद आवश्यकता होती है। पोषक आहार का सेवन सुनिश्चित करता है कि उनके पोषक तत्वों की ज़रूरत पूरी हो रही है। यह बच्चों को स्वस्थ रहने, आहार की अच्छी आदतें विकसित करने और अपने भावी स्वास्थ्य के लिए ठोस नींव रखने में भी मदद करता है। पोषक आहार शरीर की बेहतर वृद्धि में सहायता करता है, फटे हुए और टूटी-फूटी कोशिकाओं की मरम्मत (जोकि अति आवश्यक है) में सहायता करता है।

ऊपर की चर्चा से स्पष्ट है कि बच्चे जब अपनी जीवन यात्रा शुरू कर रहे हैं तब उन्हें अच्छे खेल और पोषक आहार की कितनी आवश्यकता है। ये दोनों ही चीज़ें उन्हें मज़बूत करेंगी और आगे की यात्रा के लिए एक बेहद मज़बूत आधार प्रदान करेंगी।

सुंदर सपने

बच्चे की दुनिया तो सपनों की दुनिया है। ख्वाबों में ही वे जीते हैं। तारे उनके साथी हैं, हवा उन्हीं के लिए बहती है, बारिश उन्हीं के आदेश के इंतज़ार में है, चाँद उन्हें रिझाता है, सूरज तो उन्हीं के लिए चमकता है, वे जहाज़ उड़ाते हैं और पहाड़ लाँघते हैं। आह! क्या ही मधुर ये दुनिया है और क्या ही निराले ये बच्चे। इन्हीं सपनों को हम टूटने न दें। आखिर ये सपने ही तो उन्हें उड़ान देंगे, इन्हीं को तो वे साकार करेंगे। ज़रा अपना वक्त निकालकर और उनको बोझ तले न दबाकर उनकी सहायता करिए तो, मेरे बेहद अज़ीज़ पाठकों।

रूठा हुआ भालू

बच्चे होते हैं मन के सच्चे। बचपन की सबसे अनोखी चीज़ है— रूठना। बच्चों का रूठना और हमारा मनाना ये बताता है कि उन्हें अपने महत्व का एहसास है। बचपन और बचपन की यादें दिल को बड़ी प्यारी लगती हैं। बचपन का हर पल बाद में याद आने वाला है। आज के बच्चों की बात करें तो स्कूली बैग और माँ-बाप के सपनों का बोझ इतना बढ़ गया है कि बच्चे अब ढंग से खेल भी नहीं पाते तो रूठें कब? रूठने दीजिए अपने भालू को।

ज़िद भी ज़रूरी है

मनोवैज्ञानिक आधार पर एक शानदार मुद्दे की ओर आपको ले चलता हूँ। बच्चों की ज़िद को सिर्फ़ और सिर्फ़ नकारात्मक रूप में ही देखा जाता है। साधारण शब्दों में कहें तो इसे कहीं से भी ठीक नहीं समझा जाता। ज़िद्दी बच्चों को लोग बिल्कुल पसंद नहीं करते। पर क्या हम पूरी तरह से कह सकते हैं कि ज़िद बिल्कुल ही खराब है? ज़िद में सिर्फ़ खराबी है; कहीं कुछ भी बेहतर नहीं? मैं इसका एक सकारात्मक पहलू आपको दिखाना चाहता हूँ। हद से ज़्यादा ज़िद की बात तो नहीं, लेकिन ज़िद (आवश्यक ज़िद) बालपन के विकास का एक खास हिस्सा है। ज़रा देखिए क्या नीचे बताए जा रहे गुण कहीं न कहीं ज़िद से संबंधित तो नहीं—

- विश्वास
- निर्णय
- दृढ़ संकल्प
- आशावाद
- प्रयत्न
- कुछ पाने की चेष्टा
- सततता
- विकल्प की खोज

ऊपर की चर्चा से ये कहने की कोशिश है कि उचित ज़िद में सकारात्मक पहलू भी छिपा हुआ है।

बालक और बालपन

इस बिंदु पर चर्चा प्रश्नों से करते हैं—

- बच्चे की पहचान क्या है?
- बच्चे करते क्या हैं?
- बच्चे को करना क्या चाहिए?
- बच्चे का मूल स्वभाव क्या है?
- बच्चे को क्या पसंद है?
- बच्चे की क्या ज़िम्मेदारी है? क्या उसकी कोई ज़िम्मेदारी है भी?

क्या उपरोक्त सवालों के जो जवाब हमारे मन में आ रहे हैं वे कहीं भी हमारे कर्मों से मेल खाते हैं? रहने दीजिए, उत्तर मत दीजिए। क्योंकि हमारे उत्तर और बच्चों के प्रति हमारे काम बिल्कुल भी मेल नहीं खाएँगे। क्योंकि हम तो उन्हें बड़ा बनाने में लगे हुए हैं।

हम चाहें तो इस बिंदु पर चर्चा को यहीं विराम दे दें, क्योंकि वास्तविकता कुछ भी छिपी हुई नहीं है। अगर हम गौर करें तो पाएँगे कि बचपन का गला हम घोंट रहे हैं। जिस दिन ऊपर के सवालों के जवाब यथार्थ रूप में भी सकारात्मक हो जाएँगे, समझ लीजिएगा कि आप सही रास्ते पर हैं। बाकी किताबों में तो बहुत कुछ लिखा है। उसे खिलौने तो इकट्ठा कर लेने दीजिए, कुछ शरारत तो कर ले, बालक है तो बालपन तो कर ले।

अनुभव का जादू

सीखने के तमाम तरीकों में कुछ तरीके हैं— देखकर सीखना, सुनकर सीखना, करके (अनुभव से) सीखना आदि। इन सब में अनुभव की तो बात ही निराली है। इसमें फिर संशोधन की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। दिमाग पर इसकी अमिट छाप-सी पड़ जाती है। एक बात ध्यान रखने की है कि अनुभव का सीधा संबंध समय (बिताया गया समय) से है। इसी आधार पर ये तर्क न्याय संगत जान पड़ता है कि बच्चा जब पहली बार स्कूल पहुँचे तो कुछ अनुभव लेकर पहुँचे। यह तभी संभव है जब अनुभव हासिल करने के लिए उसे घर की दुनिया में पर्याप्त समय मिल सके। इस ओर अभिभावक और शिक्षक विशेष ध्यान दें कि बाल

अनुभव बालक को आगे का रास्ता तय करने में बेहतरीन सहायता प्रदान करेगा।

साथियों की टोली

बच्चों पर अगर शुरुआत से ही अनायास का भार न डाला जाए और उसे उनकी दुनिया में मस्त (आज़ाद) रहने दिया जाए, तो थोड़ा बड़ा होते ही वे सबसे पहले जो काम करेंगे, वे हैं— साथियों की टोली बनाना। अपने खेल के साथियों के एक समूह में वे अवश्य ही जुड़ जाएँगे और आनंदित होगें। वास्तविकता ये है कि अगर ऐसी चीज़ें हमें देखने को नहीं मिल रही हैं, तो इसके मात्र दो ही बड़े कारण हैं—

- हम चाहते ही नहीं कि हमारे बच्चे कहीं शामिल हों।
- शुरुआत से ही उन्हें हम बस्ते के बोझ तले दबा देते हैं, तब भला टोली निर्माण का मौका वे पाए कहाँ।

समाजीकरण की दृष्टि से इसके नुक्सान कई हैं। विद्यालय की परिसीमा के सदस्य ज़रूर खास भूमिका निभाएँगे, लेकिन वहाँ दो समस्या जान पड़ती हैं। पहली ये कि वहाँ एक अलग ही बंधन है और दूसरी ये कि उन्हें और भी काम हैं। खैर, बच्चों की टोली के कुछ फ़ायदे देख लेते हैं—

- बच्चों के हर तरह से विकास में सहायक;
- उनके अनुभव में वृद्धि;
- उनमें लोक-भावना का जागरण;
- वे आत्म-निर्भर होंगे;
- एक-दूसरे की सहायता करना सीखेंगे;
- ज़िम्मेदारी समझेंगे;
- समय की पाबंदी होगी;
- उन्हें अपार खुशी मिलेगी।

जीने दो

इसमें दो राय नहीं कि ज़िंदगी हमारी सोच से भी कहीं ज़्यादा छोटी है। लेकिन इस बिना पर ये सोच रखना कि बहुत कुछ करना है या सबकुछ करना है, परेशानी का ही कारण होगा। तब आखिर उपाय क्या है? उपाय है— सकारात्मक सोच; जो कुछ भी करना है, खूब अच्छे से करना है। यही आज़ादी का मार्ग है। ऐसी सोच के साथ आप बच्चे पर भी दबाव नहीं डालेंगे। माता-पिता द्वारा अपने बच्चों पर दबाव बनाने का एक कारण ये भी कि वे सोचते हैं समय निकला जा रहा है या समय बहुत कम है। ऐसे में बच्चे कुछ बेहतर नहीं कर पाएँगे। यहाँ तक कि वे उस मुकाम तक भी नहीं पहुँचेंगे जहाँ तक पहुँचने की सामर्थ्य वे ईश्वर से लेकर आए थे। उन्हें आज़ादी दीजिए, उन्हें जीने दीजिए। इसकी शुरुआत नवजात शिशु से ही करनी है।

आखिर में

सारी बातों का निचोड़ ये है कि बच्चे को हमें बच्चा ही रहने देना है। इसी में उसका हित छिपा है। बिना अच्छे बचपन के उसका भविष्य कैसे अच्छा हो सकता है? ये नींव की तरह है। इसमें मज़बूती आवश्यक है। जिस चीज़ के लिए हम जतन कर रहे हैं, वही न सहेज पाए तो सब व्यर्थ ही है। जो काम उसे बाद में करना है उसे समय पूर्व उसपर न लादें। स्कूल से पहले उसके जो हक हैं, उसे वे सब हम ज़रूर देने के लिए मेहनत करें। मेहनत इसलिए क्योंकि हम इसमें बहुत पीछे हैं। नयी और अच्छी पैदावार के लिए खेत तो तैयार करना ही होगा। सबसे ज़्यादा उसे आज़ादी और मानसिक सुकून की ज़रूरत है। सही वक्त पर ये सब पा जाने पर वो ऐसा मज़बूत दरख्त बनेगा जिसे कोई आँधी हिला न सकेगी।

संदर्भ

कुरोयानागी, तेत्सुको. 2017. *तोत्तो चान.* पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा (अनुवादक). राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत.

ग्रीनबर्ग, डैनियल. 2014. *अब हम आज़ाद हैं.* पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा (अनुवादक). एकलव्य प्रकाशन, भारत.

नील, ए.एस. 2011. *समरहिल.* पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा (अनुवादक). एकलव्य प्रकाशन, भारत.

बधेका, गिजुभाई. 1988. *दिवास्वप्न,* उत्तर प्रदेश बाल कल्याण समिति, मोती महल, लखनऊ.

रा.शै.अ.प्र.प. 2016. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005.* राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली.

शिक्षा मंत्रालय. 2020. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020.* शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली.

होल्ट, जॉन. 2006. *असफल स्कूल.* अरविन्द गुप्ता (अनुवादक). एकलव्य प्रकाशन, भारत.

———. 2008. *बचपन से पलायन.* पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा (अनुवादक). एकलव्य प्रकाशन, भारत.

———. 2009. *बच्चे असफल कैसे होते हैं?* पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा (अनुवादक). एकलव्य प्रकाशन, भारत.